दिल्ली पुनर्वास की सच्चाई

साझा मंच, अप्रैल २००२

दिल्ली पुनर्वास बस्तियाँ
जिनका सर्वेक्षण हुआ है

1 नरेला
2 होलम्बी कलाँ
3 होलम्बी खुर्द
4 पुथ कलाँ
5 मंगोलपुरी
6 बक्करवाला
7 हस्तसाल
8 ककरौला
9 पप्पनकलाँ
10 रणजीतनगर
11 अजमेरी गेट
12 माता सुंदरी रोड
13 तुर्कमान गेट
14 गौतमनगर
15 मोलड़ बंद
16 मदनपुर खादर
17 त्रिलोकपुरी
18 सुंदरनगरी
19 जहाँगीरपुरी
20 भलस्वा

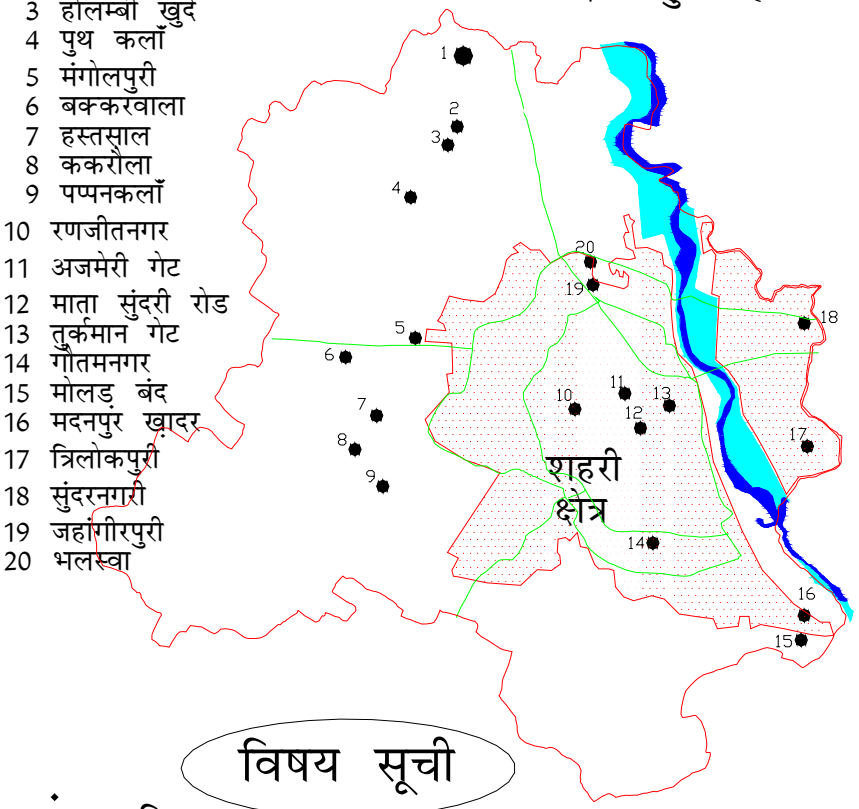

विषय सूची

1. परिचय 1
2. आवास, पुनर्वास और सरकार 3
3. गौतमनगर बस्तीवासियों की जुबानी 7
4. पुनर्वास या वनवास 11
5. अंतर्राष्ट्रीय जाँच दल की रिपोर्ट 15
6. बहुमंजिली ईमारतें 21
7. अधिकारों की रक्षा 24

परिचय

मार्च 1999 को दिल्ली के आठ संगठनों ने ''साझा मंच'' का गठन किया था। उस समय दिल्ली उच्च न्यायालय में कच्ची बस्तियों को पुनर्वासित करने की याचिका दर्ज थी और सरकार को नीति तैयार करने का आदेश दिया गया था। जैसे–जैसे साझा मंच के सदस्य संगठन उस मामले में उलझते गये वैसे उनको समझ में आया कि सरकार की ज़मीन और आवास संबंधी नीतियों में बहुत सारी खामियाँ हैं। साथ ही इन नीतियों के द्वारा शहर के ग़रीब नागरिकों के खिलाफ़ पक्षपात भी हो रहा है।

पिछले तीन वर्षों में साझा मंच का दायरा बढ़ता गया है। राजधानी के करीब 70 संगठन मंच से जुड़ते गये हैं और विभिन्न विषयों पर मंच ने काम किया है। पिछले दिनों भारी मात्रा में सरकार द्वारा झुग्गियाँ तोड़ कर करीब 1,30,000 परिवारों को सुदूर पुनर्वासित किया गया है। जबकि दिल्ली नगर पालिका की नीति के अनुसार झुग्गीवासियों को पहले न्यूनतम सुविधायें दी जानी चाहिये या उसी स्थान पर बेहतर आवास मिलनी चाहिये।

साझा मंच के साथियों ने कई बार इस पक्षपात का विरोध किया है। खास तौर से इसलिये क्योंकि आँकड़े बताते हैं कि सरकार ने अपनी ही योजनाओं को ताख पर रख कर इस शहर के मेहनतक़शों को न ज़मीन उपलब्ध करवायी है और न ही घर बनाने की सुविधा। मसलन 1982 और 2002 के बीच में दिल्ली विकास प्राधिकरण (DDA) को 16 लाख से ज़्यादा मकान बनवाने थे लेकिन बनाये केवल 3 लाख। जब आवास ही न होंगे तो लोग कहाँ जायेंगे?

भलस्वा, नरेला, और मोलड़बंद जैसी पुनर्वास बस्तियों से कई परिवार आकर मंच को वहाँ की भयावह स्थितियों के बारे में बता रहे थे। इसलिये ऐसी बस्तियों में जाकर साझा मंच के साथियों ने सर्वेक्षण का काम शुरू किया। उनमें से तीन का विवरण इस पुस्तिका में छपा है। इसके अलावा मंच ने आवास अंतर्राष्ट्रीय संगठन (Habitat International Coalition) को दस पुनर्वास बस्तियों की स्थितियों का आंकलन करने के लिये आमंत्रित किया। उनकी रिपोर्ट का सारांश भी यहाँ प्रस्तुत है।

हाल ही में सरकारी प्रवक्ताओं (और कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं) ने झुग्गीवासियों को बहुमंज़िली इमारतों में आवास मुहैया करने की बात उठाना शुरू की है। उनका

कहना है कि ऐसा करने से लोगों को दूर इलाकों में विस्थापित करने की ज़रूरत नहीं होगी और कम ज़मीन पर अधिक परिवारों को बसाया जा सकता है। यहाँ तक कि ज़मीन की बचत होगी और अतिरिक्त भूमि के व्यवसायिक उपयोग से बहुमंज़िली इमारत का ख़र्चा भी निकल आयेगा।

परंतु देश–विदेश के कई शहरों में कई कटु अनुभव मौजूद हैं जिनसे यह बात समझ में आती है कि न ही बहुमंज़िली इमारतों में घर की कीमत अधिक होती है बल्कि रख–रखाव के ख़र्च को भी ग़रीब परिवार वहन नहीं कर सकता। जिस इलाके में पानी बिजली शौचालय ज़मीन पर नहीं पहुँचता वहीं क्या ये सुविधायें ऊँचाई तक पहुँच पायेंगी?

इन बातों को मद्देनज़र रखते हुए साझा मंच के एक दल ने मंगोलपुरी और तुर्कमान गेट के बहुमंज़िली पुनर्वास बस्तियों का भी सर्वेक्षण किया है। उनका आलेख भी इस पुस्तिका में दिया है ताकि ऐसे पुनर्वास की कहानी आम नागरिकों तक पहुँच सके। पिछले तीस वर्षों के दिल्ली में पुनर्वास का बयान इस सत्य को बार बार दोहराता है कि पुनर्वास एक अमानवीय, विफल और जन विरोधी क्रिया है जिस पर तत्काल रोक लगाने की आवश्यकता है।

अंत में भारतीय संविधान में आवास के अधिकार के प्रावधान हैं और न्यायालयों ने कुछ ऐसे आदेश दिये हैं जिनका लाभ किसी भी नागरिक को अपनी सुरक्षा के लिये मिल सकता है। उन आदेशों का सार इस पुस्तिका में दिया गया है ताकि लोगों को अपने अधिकारों के बारे में मालूम हो। अधिक जानकारी के लिये आप साझा मंच से संपर्क कर सकते हैं।

आवास, पुनर्वास और सरकार

दुनू रॉय

पिछले वर्ष स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर प्रधानमंत्री महोदय ने लाल क़िले की प्राचीर पर खड़े होकर वादा किया था कि देश के शहरों में रहने वाले सभी ग़रीब परिवारों को सन 2010 तक रहने के लिए पक्का घर मुहैया कराया जायेगा। छह सप्ताह बाद विश्व आवास दिवस के दिन, केन्द्रीय मंत्रीमंडल ने प्रधानमंत्री की घोषणा को असली जामा पहनाने के मकसद से बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना का सूत्रपात किया। तय किया गया कि इस योजना के तहत अगली पंचवर्षीय योजना के दौरान 2000 करोड़ रु. ख़र्च किये जायेंगे। इसके बाद, केन्द्रीय शहरी विकास मंत्री ने घोषणा की कि सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थान शहरी ग़रीबों के लिए प्रति वर्ष चार लाख घरों का निर्माण करेंगे। इन सब घोषणाओं, योजनाओं और इनसे जुड़े आँकड़ों को तार्किक संगति की कसौटी पर परखा जाये तो खुलासा होगा कि प्रधानमंत्री के वायदे और उसे असली जामा पहनाने के लिए बनायी जा रही योजनाओं में कितना भारी अंतर्विरोध है।

हमारे देश में छोटे-बड़े कुल मिलाकर 5161 शहर है। यदि एक घर को बनाने में 50,000 रु. भी लगते हैं (यह वह रकम है जो दिल्ली नगर निगम के अनुसार आज एक झुग्गी–झोंपड़ी का सिर्फ 'पुनर्वास' करने पर ख़र्च होती है) तो बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना के तहत हर शहर में औसतन सिर्फ़ 15.5 घर बनेंगे। इस रफ्तार से तो राजधानी दिल्ली के मौजूदा छह लाख झुग्गी परिवारों को पुनर्वासित करने में ही 39,000 वर्ष लग जायेंगे। इस सरल से गणित से शायद हमारी सरकार भी अवगत रही होगी। तभी तो प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किये गये मंत्रियों के समूह ने शहरी ग़रीबों के लिए मकान के निर्माण के लक्ष्य को चार लाख से बढ़ाकर बीस लाख मकान प्रतिवर्ष कर दिया।

परन्तु कन्फेडरेशन ऑफ रिएल एस्टेट डेवलपर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया ने दिखाया है कि एक परिवार यदि उपनगरों में 40 वर्ग मीटर का निर्मित मकान लेना चाहे तो उसे लगभग दो लाख रु. देने होंगे। यदि उसे 75% का ऋण भी दिया जाये तो भी 15 वर्षीय ऋण की मासिक किश्त 1860 रु. होगी। यह रकम एक झुग्गी परिवार की औसत मासिक आमदनी की तकरीबन 75 फ़ीसदी है। इसी से पता चलता है कि ग़रीब को आवास मुहैया कराने के बारे में सरकार किस

कदर गंभीर है। प्राइवेट बिल्डरों से पूछो तो वे तो यही कहेंगे कि इस समस्या के समाधान के लिये हमें खुली छूट दे दी जाये और सरकार सिर्फ़ हमारी पीठ थपथपाती रहे।

सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के इन बहादुर पैरोकारों में से कोई हमें यह नहीं बताता कि आवास निर्माण के क्षेत्र में पिछले पचास वर्षों में उनका क्या रिकार्ड रहा है। मिसाल के तौर पर दिल्ली को ही लें। 1981 के अपने मास्टर प्लान में डी.डी.ए. (दिल्ली विकास प्राधिकरण) ने कहा था कि वह अगले 20 वर्षों में 16.2 लाख घरों का निर्माण करेगा। 1998 में डी.डी.ए ने 30 वर्षों में केवल 2.6 लाख मकान बनाये थे। इसके अलावा 2.5 लाख मकान उन लोगों ने बनाये जिन्हे डी.डी.ए ने प्लॉट आबंटित किया था। यानि 1968 से केवल 5.1 लाख घर बने। तो बाकी के 11.1 लाख मकान कहाँ गये? या वह 8,500 हेक्टेयर ज़मीन (1985 के बाद अधिग्रहित की गयी 20,000 हेक्टेयर ज़मीन की तो बात ही छोड़ दें) जिन पर ये मकान बनने थे?

दूसरी तरफ, प्राइवेट बिल्डरों ने निश्चित रूप से शहर में बहुत बड़ी बड़ी रिहायशी एवं आवासीय इमारतें बनायी हैं। लेकिन ग़रीबों के लिए उन्होंने एक मकान भी बनाया हो इसका रत्ती भर भी कोई सबूत नहीं मिलता है। हाँ, डी.डी.ए. यह कुख्यात दावा ज़रूर करती है कि उसने इस अवधि में 2.4 लाख झुग्गी परिवारों को 'पुनर्वासित' किया है। हालांकि डी.डी.ए. के अपने मास्टर प्लान में सिर्फ़ 50,000 झुग्गी परिवारों के पुनर्वास का प्रावधान है और पिछले वर्ष ही लगभग 25,000 झुग्गी परिवार विस्थापित किये गये। जबकि इस वर्ष 80,000 को विस्थापित करने का लक्ष्य रखा गया है। भूतपूर्व शहरी विकास मंत्री श्री जगमोहन ने तो आत्म प्रशंसा में छाती ठोककर यहाँ तक दावा किया है कि ये 'आदर्श' पुनर्वास है। सच्चाई, हमेशा की तरह, शासकों के इन शाही दावों के ठीक विपरीत है।

''पुनर्वास'' का अनुभव ''पुनर्वासित'' किये गये लोगों के लिए कितना दर्दनाक होता है यह जानना हो तो अंकुर स्वयंसेवी समाजिक संस्था द्वारा उत्तरी दिल्ली में स्थित भलस्वा पुनर्वास कालोनी में किये गये सर्वेक्षण को देखना होगा। 98% विस्थापित लोगों ने कहा कि उनके घर में खाने के लाले पड़े हुए हैं क्योंकि उनका रोज़गार या तो छिन गया है या आमदनी आधी रह गयी है। इसकी वजह यह है कि भलस्वा कालोनी उनकी पुरानी रिहायश की जगह – जो उनकी काम

की जगह के नज़दीक थी – से 20 कि.मी. से ज़्यादा दूर है। दूरी ज़्यादा होने के चलते पैदल या साइकिल से तो आ–जा नहीं सकते। बस का इस्तेमाल करना ही पड़ता है। तो आने–जाने में अब समय भी ज़्यादा लगता है और पैसा भी।

विस्थापन की प्रक्रिया में न जाने कितने लोगों का घर का सामान चोरी हो गया और राशनकार्ड व वोटर कार्ड जैसे महत्वपूर्ण दस्तावेज खो गये। बहुत से बच्चों, महिलाओं और बूढ़ों को चोटें खानी पड़ी क्योंकि वे समय रहते बुलडोज़र के रास्ते से हट नहीं पाये और दीवारें व छत उनके ऊपर आ गिरे। सभी परिवारों को पुनर्वास का ''लाभ'' उठाने के लिए 5 से 10 फीसदी मासिक ब्याज पर सात हजार रुपये का ऋण लेना पड़ा। लोगों की बस्ती उजाड़ कर, उन्हें उनकी काम की जगह से 20-25 कि.मी. दूर एक 12½-18 वर्ग मी. के ज़मीन के टुकड़े पर पटककर सरकार यह समझती है वह लोगों को बहुत फ़ायदा पहुंचा रही है। यह सात हज़ार रुपये इसी फ़ायदे के लिए लिये जाते हैं। याद रखने लायक बात यह है कि 12½-18 वर्ग मी. ज़मीन जो आज दी जा रही है वह मास्टर प्लान के मानकों का सरासर उल्लंघन है।

जो सीधा आर्थिक नुकसान हुआ सो तो हुआ ही, नयी जगह पर बुनियादी सुविधाओं के सर्वथा अभाव ने लोगों की ज़िन्दगी को और दूभर बना दिया। परिवार दर परिवार यही बात सामने आयी कि पीने का पानी और बिजली भलस्वा में ईद के चाँद की तरह हैं। पीने के पानी की टूटियाँ हैं नहीं, टेंकर कभी–कभार ही दर्शन देता है। और जब आता भी है तो बस्ती के बाहर ही थोड़ी देर खड़ा रहकर वापिस लौट जाता है। इधर लोग खाली बाल्टियां लेकर वापिस घर लौट आते हैं। बिजली भी नहीं है। तब फिर बच्चे पढ़ेंगे कैसे? अंधेरे में डर व अनिश्चितता भी बनी रहती हैं। लोग मोमबत्ती जलाते हैं अंधेरा भगाने के लिए।

बस्ती में राशन की कोई दुकान नहीं है। आस–पास के इलाके में जो दुकानें हैं वे इन लोगों के कार्ड को मानने से इंकार करते हैं। कोई सरकारी डिस्पेंसरी भी नहीं है। क्षेत्र में प्राइवेट डॉक्टर ज़रूर हैं मगर वे मोटी फ़ीस लेते हैं। इसलिए लोग जब तक बहुत ज़्यादा बीमार नहीं होते हैं तब तक वे डाक्टर के पास जाने से कतराते हैं। न शौचालय, न ढलाव, न साफ–सफाई, न नालियां – रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की वे तमाम बुनियादी सुविधाएं, जिनका शासक–प्रशासक अपनी पक्की कालोनियों में इतना सहज एवं आश्वस्त होकर इस्तेमाल करते हैं, भलस्वा की पुनर्वास कालोनी से नदारद हैं।

सबसे बुरी तो रोजमर्रा की ज़िन्दगी की असुरक्षा है। नयी कालोनी यानि नये पड़ोसी। लोग एक दूसरे को जानते तक नहीं तो विश्वास कैसे करें। और वो भी तब जब खौफ एवं अनिश्चितता समूची आबोहवा में रच–बस गये हों। केरोसीन और गैस के अभाव में लकड़ी और गोबर के उपले जलाकर खाना बनाना पड़ता है। कच्ची–पक्की दीवारें और छत कब आग पकड़ लें कोई ठिकाना नहीं। आग न भी पकड़े तो प्रकति की मार झेलने में तो ये मकान यकीनन बिल्कुल अक्षम हैं। दिन में सरकार नींद हराम करती है तो रात में मच्छर। खाने को वैसे ही कम है और जो है उस पर धूल की एक मोटी परत बिछी है। बच्चों की पढ़ाई लिखायी छूट गयी है क्योंकि आस पास स्कूल नहीं है और पुराने स्कूल इतने दूर हैं कि बच्चे वहां तक पहुंच ही नहीं पाते हैं।

जिस व्यक्ति ने अपनी ज़िंदगी में कभी विस्थापन का दर्द न झेला हो उसके लिए इस बात की कल्पना करना भी कठिन है कि एक 'गंदी' (लेकिन सुरक्षित) झुग्गी बस्ती से एक 'नयी' (लेकिन वीरान) कालोनी में विस्थापित किये जाने का एक परिवार के लिए क्या मतलब होता है। यह ज़िन्दगी की जड़ों का लहुलुहान हो जाना है। यही वजह है कि वे तमाम योजनाकार और नौकरशाह, प्रशासक एवं राजनेता, जज व 'सम्मानित' नागरिक, जो वैभवशाली दिल्ली की कल्पना करते हैं, विस्थापन की पीड़ा को समझने में असमर्थ हैं।

(अनुवाद : ललित)

गौतमनगर बस्तीवासियों की जुबानी

डॉ अल्पना सागर

गौतमनगर बस्ती देश के जाने–माने अस्पताल एवं चिकित्सा शोध संस्थान *अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (ऐम्स)* से सट कर बसी हुई थी। इसके एक तरफ ऐतिहासिक मस्जिद मोठ थी तो दूसरी तरफ पक्की कालोनियॉं। बस्ती की बसाहट 1960 के दशक में शुरू हुई। अस्पताल बनाने के लिए ठेके पर लाये गये मज़दूरों ने पास में खाली पड़ी ज़मीन पर अपना डेरा डाल लिया। धीरे–धीरे और जगहों से भी लोग आते गए और बस्ती बढ़ती चली गयी। सुरक्षा और रिश्तों को बनाये रखने की ज़रूरत लोगों को अपने जान–पहचान वालों के साथ ही रहने को प्रोत्साहित करती थी। तमिलनाडु के सेलम जिले के लोग एक साथ रहते थे तो पूर्वी उत्तर प्रदेश के निवासी एक साथ। बस्ती के एक हिस्से में राय बरेली के मुस्लिम रहते थे तो दूसरे मे बुलंदशहर के बाशिंदे।

शुरू में यह इलाक़ा वीरान था किन्तु धीरे–धीरे साऊथ एक्सटेंशन, नीति बाग़, गुलमोहर पार्क जैसी अमीर कालोनियां यहां बसने लगीं। इन कालोनियों के निर्माण के लिए आवश्यक श्रम की पूर्ति अक्सर गौतमनगर बस्ती से ही होती थी। पुरुष आस–पास के बाज़ारों में दुकानों पर काम करते और एक बड़ी संख्या दिहाड़ी मज़दूरों की थी। औरतें कालोनियों में जाकर घर का काम भी करने लगी। परन्तु शहर की अभिजात्य कालोनियों के बीचोबीच बसी यह बस्ती 'संभ्रांत' लोगों की आँख की किरकरी बनने लगी। कई बार तोड़–फोड़ हुई परन्तु बस्ती में लोगों के बसने की प्रक्रिया थमी नहीं। 1982 में बस्ती को एक अनधिकत बसाहट के रूप में स्वीकार कर लिया गया और नगर निगम ने बस्ती में पानी की लाइन बिछा दी (हालांकि पानी 1990 में जाकर मिला)। वी.पी.सिंह सरकार के दौर में बस्ती को ग़ैर–क़ानूनी रूप से बिजली हासिल हुई।

1990 के दशक की शुरूआत में ही सरकार ने बस्ती के मुख्य रास्तों पर पक्की नालियां और खड़ंजा बनवा दिया था। लेकिन अंदर की गलियां और नालियां कच्चे ही रहे। पहले बस्ती में चलता–फिरता (मोबाइल) शौचालय हुआ करते थे। 1990 के दौरान ही बस्ती में 10 सुलभ शौचालय और 10 गुसलखाने बना दिये गये। सड़क पर एक कूड़ाघर था जहां कालोनी और बस्ती दोनों जगहों के लोग अपना कूड़ा डालते थे। बच्चे किदवई नगर और मस्जिद मोठ के सरकारी स्कूलों में पढ़ने के लिए जाते थे। रोग–बिमारी होने पर लोग ऐम्स या सफ़दरजंग

अस्पताल जा सकते थे। बस्ती के भीतर एवं इर्द–गिर्द बहुत से पंजीकत, ग़ैर–पंजीकत डाक्टरों ने भी अपने क्लीनिक खोले हुए थे।

सरकार द्वारा अनौपचारिक रूप से स्वीकति देने के बावजूद, अस्सी के पूरे दशक के दौरान यह बस्ती ऐम्स और डी.डी.ए. के बीच विवाद का स्त्रोत बनी रही। 1964-69 में प्राप्त ज़मीन पर ऐम्स अस्पताल को बढ़ाना चाहता था और उसे अब ज़मीन की ज़रूरत थी। इसलिए बस्ती के 4000 परिवारों में से तकरीबन 300 के पुनर्वास के लिए डी.डी.ए. को 1.30 करोड़ रुपये रकम अदा की गई। पुनर्वास की यह प्रक्रिया 1999 में शुरू हुई। लोगों को कोई औपचारिक नोटिस न देकर यही कहा गया कि ज़्यादा जानकारी चाहिये तो एम.सी.डी स्लम विभाग के दफ्तर में जाओ। प्रापर्टी डीलरों और ठगों ने लोगों की जानकारी के अभाव का फ़ायदा उठाते हुए किसी का राशन कार्ड हड़प लिया तो किसी से नगद पैसे ठग लिये।

इन सब के बावजूद लोग खुश थे कि उनका पुनर्वास हो रहा है। उन्हें लग रहा था कि उन्हें अपनी ज़मीन मिलेगी, सारी सुविधायें मिलेंगी और वे पहले से अच्छी हालत में रहेंगे। इस तरह जैसे–तैसे करके लोगों ने पैसे जमा किये और 1999 में दीपावली के पास मोलड़बंद में उनका पुनर्वास कर दिया गया। लेकिन यह क्या ! नयी जगह पर तो किसी बुनियादी सुविधा का नामोनिशान तक नहीं था। कड़कड़ाती सर्दी में पूरे तीन महीने लोगों को खुले मैदान में प्लास्टिक और चटाई के टेंट बनाकर रहना पड़ा। टेंकर आते थे तो थोड़ा बहुत पानी मिल जाता था। शौच जाने के लिए लोग आस–पास के मैदान का इस्तेमाल करते थे। अली गाँव के किसान अपनी बगल में अचानक उग आयी इस बसाहट से बहुत परेशान थे। लोगों को भगाने के लिए वे अक्सर मैदान में पानी छोड़ देते थे। जनवरी 2000 में जाकर लोगों को ज़मीन मिली। लेकिन प्लॉट का आबंटन लॉटरी के आधार पर किया गया। इसके फलस्वरूप, बरसों के पड़ोसी जुदा हो गये। यहां तक कि संयुक्त परिवार बिखर गये, अपनी भाषा, धर्म, जाति और संस्कति के लोगों के पास रहने से जो सहारा मिलता था वो अचानक छिन गया।

पुनर्वास से लोगों को सामाजिक रूप से तो नुकसान हुआ ही, आर्थिक रूप से भी करारा झटका लगा। पुनर्वास कालोनी लोगों के काम की जगह से इतनी दूर थी कि बहुतेरों का तो काम ही छूट गया। जिनका नहीं छूटा, उनका आने–जाने में

किराया इतना लगने लगा कि कमाई आधी रह गयी। सबसे ज़्यादा कष्ट तो महिलाओं को उठाना पड़ा। पहले वे आस–पास के घरों में झाड़ू–बर्तन करके 500-700 रुपये कमा लेती थी। लेकिन अब इतना किराया भरकर काम करने जायें तो बचेगा क्या? पुनर्वास के फेर में औरतों का काम बिल्कुल चौपट हो गया। इसी तरह से चौक पर बैठने वाले निर्माण मज़दूर भी बेरोज़गार हो गये। इतना किराया भरकर चौक पर जायें और काम न मिला तो? उल्टे लेने के देने पड़ जायेंगे।

लोगों की कमाई पर असर पड़ा तो बच्चों की पढ़ाई छूट गयी। आस–पास कोई स्कूल नहीं था और दूर जाने के लिए किराये के पैसे नहीं थे। बहुत से बच्चों को अपने छोटे भाई–बहनों की देखभाल के लिए घर पर रहना पड़ता था इसलिए वे स्कूल नहीं जा पाते थे। सरकारी डिस्पेंसरी करीब 2 कि.मी. दूर थी और प्राईवेट डॉक्टर भी कम से कम 1 कि.मी. दूर। आस–पास केवल अपोलो अस्पताल था और लोग वहाँ इलाज कराने गये तो पता चला कि वहां मुफ़्त में कुछ उपलब्ध नहीं है – न जांच, न ईलाज, न दवाईयां।

आज गौतमनगर के बस्तीवासियों का पुनर्वास हुए दो साल से ज़्यादा हो चुके हैं। इस बीच जिनके पास पैसा था उन्होंने एक मंज़िला या दो मंज़िला मकान बना लिया है। ज़्यादातर लोग ऐसे हैं जो आज भी बांस पर प्लास्टिक की चादर डालकर गुज़र कर रहे हैं। हांलाकि मथुरा रोड से लेकर बस्ती तक ईटों की सड़क बन गयी है लेकिन गलियां आज भी कच्ची हैं। घरों का गंदा पानी आज भी बाहर बने गड्ढों में गिरता है और औरतें अपने हाथों से गड्ढों से गंदा पानी निकाल गली में फेंकती हैं। बड़े नाली की कोई निकासी नहीं है इसलिए पानी हमेशा जाम रहता है। मच्छरों के पनपने के लिए इससे बेहतर जगह और क्या हो सकती है। लोग अपना कूड़ा प्लास्टिक की थैलियों में भरकर आस–पास की खाली जगह में फेंकते हैं। कुछ बिना लाइसेंस के डाक्टर और कुछ स्वंयसेवी संस्थाएं कालोनी में आ गयी हैं। स्कूल के नाम पर कुछ टेंट लगा दिये गये हैं जहाँ शिक्षक के आने पर बच्चों की पढ़ाई होती है। कुछ बच्चे बदरपुर के सरकारी स्कूल में पढ़ रहे हैं। औरतें–आदमी आज भी काम के लिए दक्षिण दिल्ली जाते हैं। कालोनी में कुछ न कुछ निर्माण कार्य चलता रहता है जिससे कुछ निर्माण मज़दूरों को वहीं काम मिल जाता है।

उजड़ने और दोबारा कहीं और जाकर बसने की प्रक्रिया में जो पीड़ा है उसमें सबसे पीड़ादायक है बस्ती के सामाजिक ताने–बाने का टूटना और उसके नतीजे। पुनर्वास कालोनी में जिस कदर हिंसा, वेश्यावति, दारूबाजी और नशाबाजी मौजूद है वैसा झुग्गी बस्ती में कभी नहीं था। इसके लिए एक हद तक तो बेरोज़गारी, हताशा और बच्चों का स्कूल छूटना ज़िम्मेदार है। लेकिन पुनर्वास के समय प्लॉट लॉटरी के हिसाब से दिये जाने के फलस्वरूप बस्ती के बने–बनाये समुदाय टूट कर बिखर गये। झुग्गी बस्ती के एक खास हिस्से में बसे असामाजिक तत्व भी बिखर गये हैं और अब शराब, ड्रग्स आदि सब जगह मिल रहे हैं। पहले लोग एक दूसरे के न सिर्फ परिवारों को जानते थे बल्कि गाँव के रिश्तेदारों से भी परिचित थे। अतः उनके बारे में सूचना गाँव तक भी पहुँच जाती थी। गाँव के बुजुर्गों की बात सभी मानते थे जो कि समाज पर नज़र रखते थे और नयी पीढ़ी को बुराईयों से बचाते थे। लेकिन आज समाज और युवा पीढ़ी के मार्गदर्शन के लिए बड़े पास में नहीं है। बच्चे आवारागर्दी की ओर अग्रसर हैं और सुख दुख बाँटने वाला कोई नहीं रहा। न ही ज़रूरत के समय मदद करने वाला। फलस्वरूप अब लोगों का मानना है कि पुनर्वास उनके लिए सामाजिक, आर्थिक, मानसिक सभी तरह से बड़ा महंगा पड़ा है।

(अनुवादः ललित)

पुनर्वास या वनवास

सदरे आलम

यूँ तो दिल्ली हिन्दुस्तान की राजधानी होने के कारण राजाओं एवं हुकुमरानों के हमले का शिकार होकर पुनर्वास की स्थिति से कई बार गुज़र चुकी है। लेकिन आज की पुनर्वास योजना एवं राजाओं के हमले में फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि पहले हर कोई बेघर होता था लेकिन अब सरकार चुन–चुन कर ग़रीबों को बेघर कर रही है। दिल्ली के सौंदर्यीकरण के नाम पर अमीर और नेतागण के ऐशोआराम की ज़िंदगी को सुरक्षित किया जा रहा है भले ही उसके बदले में दिल्ली को अपनी मेहनत व पसीने से खूबसूरत बनाने वाले मज़दूर व मेहनतक़श बेघर क्यों न हो जाएं।

जहाँ एक तरफ़ कारखाने बन्द होने से मज़दूर बेरोज़गार हुए वहीं दूसरी ओर विस्थापन से बेघर भी। विस्थापन से पहले दि.न.नि. (MCD) एवं दि.वि.प्रा. (DDA) ने यह कहकर झुग्गियों को तोड़ दिया कि पुनर्वास कालोनी में आप को बेहतर सुविधाएं दी जाएंगी। हमने ऐसे आठ कालोनियों का सर्वेक्षण किया है और यह पता चला है कि शायद गिनती के चन्द परिवार हैं जो किसी बाहरी आय के कारण गुजारा कर पा रहे हैं। अन्यथा तमाम कालोनियों में रोज़गार, आवास, पीने के पानी, सफ़ाई, शौचालय, स्वास्थ्य सुविधायें, यातायात एवं शिक्षा जैसी मूलभूत आवश्यकताओं का न सिर्फ़ अभाव नज़र आता है बल्कि इन समस्याओं से छुटकारा पाने में और कितने साल लग जाएंगे, इसका पता भी नहीं चलता। कालोनियों के वीराने में बसे होने के कारण आस–पास में कोई रोज़गार नहीं मिल पाता है और अगर बाहर जाकर कोई रोज़गार तलाश करे, तो उसके लिए बसों में इतने पैसे ख़र्च हो जाते हैं, कि कुछ उसके पास बच नहीं पाता। होलंबीकलाँ एवं होलंबी खुर्द जैसे इलाके जो कि अभी बसाये ही जा रहे हैं, अपने आप में पुनर्वास कालोनियों की समस्याओं के उदाहरण को प्रस्तुत करते हैं। पिछले कुछ दिनों में शाम के समय काम करके लौट रहे लोगों के साथ लूट–पाट की घटना भी सामने आई है। इससे परेशान होकर होलम्बी खुर्द के लोगों ने इसकी जानकारी लेफ्टिनेंट गवर्नर को भी दी।

इस तरह की घटना शुरू के दौर में हर कालोनी में देखी गई है। शाम होते ही लोगों का अपने–अपने घरों में बंद हो जाना, हमेशा अपने बच्चों पर कड़ी निगरानी रखना एवं अपने घर के सामान की सुरक्षा में सचेत रहना, कालोनी की

असुरक्षित होने की हालत को दर्शाता है। तमाम पुनर्वास कालोनियों में अधिकतर लोगों की ज़िन्दगी खुले आसमान के नीचे या प्लास्टिक के नीचे गुज़र रही है। लोगों के पास इतने पैसे नहीं हैं कि वे अपना मकान बना पाएं। बारिश में उनका सारा सामान भीगता रहता है और वह बीमार भी पड़ते हैं। अधिकतर कालोनियों में डॉक्टर का कोई प्रबंध नहीं है। आमतौर पर स्थानीय वैद्य या हकीम के इलाज से ही लोग अपना काम चलाते हैं। अस्पताल नहीं होने के कारण लोगों का बीमार रहना आम है। सर्वेक्षण के दौरान लोगों की आम राय थी कि पुनर्वास के बाद वे अधिक बीमार पड़े हैं। अस्पताल नहीं होने के कारण कुछ इलाकों में लोगों की मौत भी हुई है। इसी संदर्भ में होलम्बी खुर्द में एक गर्भवती महिला को सही समय पर दवा नहीं मिलने के कारण अपनी जान से हाथ धोना पड़ा है। इस तरह की घटना इन सभी कालोनियों में अक्सर देखने को मिलती रहती है।

सरकार की यह विस्थापन योजना जीवन के जिन–जिन पहलुओं को अधिक प्रभावित करती है उनमें बच्चों की शिक्षा महत्वपूर्ण है। विस्थापन के कारण कई माह तक तो सभी बच्चों की पढ़ाई बंद रही। एक दो साल के बाद भी गिनती के

चन्द बच्चे ही दुबारा पढ़ाई आरंभ कर पाये। किसी भी कालोनी के अंदर स्कूल नहीं है। मोलड़बंद और भलस्वा जैसे कालोनी में भी कामचलाऊ टेन्ट लगा कर पढ़ाई शुरू की गई है लेकिन इन इलाकों में रहने वाले बच्चों का बड़ा हिस्सा

स्कूल नहीं जाता है। पढ़ने की ठीक सुविधा न होने के कारण हर कालोनी के बच्चे सड़कों पर खेलते एवं शोर मचाते नज़र आते हैं। कुछ बच्चों ने बताया कि यहाँ के स्कूल में अच्छी पढ़ाई न होने के कारण हम 4 कि.मी. पैदल चल कर हर रोज़ पढ़ने स्कूल जाते हैं। बस बहुत देर में आती है उतनी देर में हम नज़दीक के रास्ते से पैदल स्कूल पहुँच जाते हैं।

सफ़ाई का कोई इन्तज़ाम न होना एक बड़ी समस्या है। एक दो कालोनियों को छोड़कर अभी किसी भी कालोनी में नाली या नाला नहीं बना है और जहाँ बना भी है वह आगे से बन्द है व कोई निकासी नहीं है। पानी भरा होने के कारण बच्चों के गिरने की घटना होती रहती है। नाले की ठीक निकासी न होने के कारण घर के सामने के नाले में पानी जमने से आपस के झगड़े भी होते हैं। अधिक इलाकों में लोग घर के सामने गड्ढा खोद कर काम चला रहे हैं। इन्हीं गड्ढों से मलेरिया जैसी बिमारियों की उत्पत्ति होती है। जहाँ तक कूड़े एवं कचरे का सवाल है, हर कालोनी में सड़क के किनारे थोड़ी–थोड़ी दूर पर कचरों का ढेर लगा पड़ा है। कोई उसे फेंकने वाला नहीं है। जिन एक दो इलाकों में कर्मचारी हैं वह अपनी मनमानी करते हैं। दि.न.नि या दि.वि.प्रा. के दफ़्तर के आसपास की जगहों को साफ़ कर देना ही केवल उनका काम मालूम होता है।

विस्थापन के बाद इन कालोनियों में लोगों के जीवन का हरेक पहलू प्रभावित हुआ है। असंतोष की भावना रहने के कारण कोई किसी पर भी भरोसा नहीं कर पाता। हर छोटी–छोटी बात पर मार–पीट की नौबत आ जाती है। पुलिस का व्यवहार भी इन मामलों में संदेहास्पद है। सड़क के किनारे ठेला लगाने वालों से पैसे वसूलना, आपस में झगड़ा एवं मार–पीट करने वालों से पैसे लेकर छोड़ देना। साथ–साथ कुछ इलाकों में वह अपने आदमी भी रखती है ताकि वह आपस में लड़ायें और फिर आकर उन दोनों लड़ने वालों से पैसा वसूल कर सकें। मोलड़बंद में पुलिस का रोल दूसरी तमाम कालोनियों से थोड़ा अलग है। काम ना मिलने के कारण लोग बगल से गुज़र रही माल–गाड़ी को रोककर कोयला उतारते हैं। पुलिस गाड़ी को रोकते समय या कोयला उतारते समय तो कुछ नहीं बोलती लेकिन कोयला उतर जाने के बाद लोगों को खदेड़ कर कोयले को अपने कब्ज़े में ले लेती है और फिर बीस रुपये प्रति बोरी की दर से उन्हीं लोगों को कोयला बेचती है जो गाड़ी रोककर कोयला उतारते हैं। फिर ये गाँव वाले चालीस रुपये प्रति बोरी की दर से उस कोयले को बाज़ार में बेचते

हैं। पुलिस जानबूझ कर इस अपराध को नज़रअंदाज करती है ताकि उसका अपना फायदा होता रहे।

जीवन की तमाम पहलुओं पर ग़ौर करने के बाद कुछ तथ्य सामने आते हैं

- विस्थापन के नाम पर सरकार का इरादा इन गरीबों को बेघर करना है। अन्यथा सड़क, स्कूल, अस्पताल जैसी मूलभूत चीजों के बनने के बाद विस्थापन किया जा सकता था। विस्थापन के बाद सरकार ने जो कुछ भी योजना बनाई है वह केवल काग़ज़ एवं आंकड़ों में है। लोगों को उसका कोई लाभ नहीं मिला है।
- सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि पुनर्वासित लोगों की समस्याओं को लेकर सरकार ने अभी तक कोई विचार विमर्श नहीं किया है।
- इन इलाकों में रहने वाले लोगों की हालत को बेहतर बनाने के लिये बहुत सी स्वंय सेवी संस्थाएँ कार्यरत हैं और हर कोई अपने तरीक़े से समस्याओं का समाधान तलाश कर रहा है। साझा मंच भी इन तमाम समस्याओं से निपटने के लिये हर इलाके में कालोनी के लोगों की टीम बनाने की कोशिश कर रहा है ताकि इन इलाकों की समस्याओं को रेखांकित कर इलाके के निवासियों द्वारा ही इसका समाधान किया जा सके।

अन्तर्राष्ट्रीय जाँच दल की रिपोर्ट

भूमिका

साझा मंच के आग्रह पर हैबिटेट इंटरनैशनल कोअलीशन (HIC) की आवास एवं भूमि समिति ने फरवरी 2001 में एक अन्तर्राष्ट्रीय जाँच दल बनायी जिसका काम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCT), दिल्ली में पुनर्वास तथा बलपूर्वक बेदखली का अध्ययन करना था। इसके लिए दिल्ली के दस पुनर्वास कालोनियों* को चुना गया। इस दल का मुख्य उद्देश्य यह देखना था कि जब भी दिल्ली में बेदखली या पुनर्वास होता है तो क्या विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा स्थानीय क़ानूनों, संधियों, मानकों, बाध्यताओं, अधिकारों तथा भारतीय संविधान, राष्ट्रीय स्लम नीति (मसौदा), तथा स्थानीय नगर निगम के अपने दायित्वों को ध्यान में रखकर किया जाता है या नहीं।

दल के सदस्य नगर निगम के अतिरिक्त स्लम कमिशनर मनजीत सिंह से भी मिले। दल ने दिल्ली सरकार के शहरी विकास विभाग के सचिव नारायण स्वामी से मिलकर यह जानने की भी कोशिश की कि जब शहर के मज़दूर वर्ग के पुनर्वास की कोई योजना बनती है तो उसमें उनके मानव अधिकार का ध्यान रखा जाता है या नहीं। इस दौरान इस विषय से जुड़े ऐतिहासिक सामग्रियों, पूर्व जाँच दलों के रिपोर्ट, शोध पत्रों, अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून सामग्रियों, घरेलु क़ानून व न्यायालय के निर्णयों का भी पुनरावलोकन किया गया तथा आवास के अधिकार से जुड़े संगठनों के कार्यकर्ताओं का साक्षात्कार भी लिया गया।

अपने अध्ययन के अन्त में दल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पुनर्वास से संबधित जब भी कोई बेदखली होती है तो उसमें लोगों के हर प्रकार के मानव अधिकार का उलंघन होता है, चाहे वह उनके जीविका का अधिकार हो, शिक्षा का अधिकार हो, स्वास्थ्य का अधिकार हो, साफ़ पीने के पानी का अधिकार हो, साफ़ सुथरे वातावरण का अधिकार हो, या उनके समुचित आवास का अधिकार हो। दूसरे अर्थों में जब भी कोई बस्ती पुनर्वास के लिए तोड़ी जाती है तो ऊपर लिखित सारे अधिकारों का हनन होता है तथा इसका सबसे बुरा असर औरतों, बच्चों, विकलांगों तथा बुजुर्गों पर पड़ता है।

---

* *जहाँगीरपुरी, सुंदरनगरी, त्रिलोकपुरी, पप्पनकलां, ककरोला, पून्डकलां, भलस्वा, हस्तसाल, मदनपुरखादर, बक्करवाला*

पुनर्वास का इतिहास :--

दिल्ली बहुत ही पुराना शहर है। यह अब तक नौ बार बस चुकी है लेकिन पुनर्वास की विधिवत शुरूआत यहाँ 1912 में हुई जब अंग्रेजों ने दिल्ली को भारतीय उपनिवेश की राजधानी बनाया। दिल्ली को राजधानी घोषित करने के बाद अंग्रेजों ने वैसे इलाकों को स्लम घोषित कर दिया जिसकी उन्हें जरूरत थी। स्लम घोषित करने का मतलब था कि यह इलाके इन्सान के रहने लायक नहीं हैं अतः इसे खाली कर देना चाहिए। इसके बाद 1947 में देश के बंटवारे के समय पाँच लाख शरणार्थी दिल्ली आये। इन्हें रिंग रोड़ के किनारे बसाया गया। इनके पुनर्वास में सरकार तथा राज्य द्वारा प्रचुर आर्थिक तथा अन्य ढांचागत सहयोग भी दिया गया। आज ये लोग दिल्ली के उच्च मध्य वर्ग में गिने जाते हैं।

शहर में विकास तथा निर्माण कार्यों की वजह से बाद में भी लोगों का आना तथा बसना जारी रहा। अतः 1960 तक फिर से शहर के कुछ हिस्से झुग्गी बस्ती में तब्दील हो गये। शहर की कुल आबादी में ऐसे लोगों की संख्या तब 4.4% थी। ये सारे लोग आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के थे। इन्हें बसाने के लिए तब की सरकार ने इस शहर की 5% ज़मीन दी।

1970 तक आर्थिक रूप से कमजोर (याने की मज़दूर) लोगों का हिस्सा शहर की कुल आबादी का 25% हो गया। लेकिन इस बार सरकार ने इनकी जनसंख्या के मुताबिक ज़मीन देने से इन्कार कर दिया तथा इन्हें शहर के पश्चिमी, पूर्वी तथा दक्षिणी इलाके में स्थित औद्योगिक क्षेत्रों में पुनर्वासित कर दिया। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक साढ़े सात लाख तथा ग़ैर सरकारी आंकड़ों के मुताबिक नौ लाख लोगों को जबरन शहर के बाहर किया गया ।

1950 के शरणार्थी पुनर्वास तथा 1970 के बाद के पुनर्वास में एक बहुत ही बड़ा फ़र्क पाया गया। 1970 तथा उसके बाद सरकार ने किसी भी तरह का आर्थिक एवं ढांचागत मदद देने से मना कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि ज़्यादातर लोग जिन्हें शहर के बाहर पुनर्वासित किया गया था वे वापस काम की तलाश में शहर में आ गये। यह सिद्ध करता है कि उचित आर्थिक तथा अन्य ढांचागत सहयोग के बिना पुनर्वास संभव नहीं है।

आज सरकार ग़रीबों का दिल्ली में आकर बसने को कई तरीकों से हतोत्साहित कर रही है, जैसे 90,000 ओद्योगिक इकाईयों को प्रदूषण एवं पर्यावरण के नाम पर बन्द करना, छोटे कारोबारियों द्वारा शहर में धंधा करने के लाइसेंस पर रोक लगाना, अतिरिक्त कर लगाना, आवश्यक सेवाओं (जैसे पानी, बिजली इत्यादि) का निजिकरण करना, राशन कार्ड बंद कर देना इत्यादि। लेकिन इन सब के बावजूद लोगों का काम के तलाश में दिल्ली आना जारी है। क्या उनके कोई हक़ नहीं हैं?

समुचित आवास का अधिकार

समय–समय पर भारत ने अनेक ऐसे प्रतिज्ञापत्रों, दस्तावेज़ों तथा समझौतों पर हस्ताक्षर किये हैं जिसमें यह साफ़–साफ़ कहा गया है कि लोगों के लिए समुचित आवास की व्यवस्था करना राज्य की ज़िम्मेदारी है। ऐसे कुछ समझौते इस प्रकार हैः–

अन्तर्राष्ट्रीय संधि समझौते -

1. ***महिला विरोधी भेदभाव के खात्मे संबंधित सम्मेलन (CEDAW) -*** इसके अनुसार सरकार बाध्य है कि वह हर प्रयत्न करे कि देश की प्रत्येक महिला समुचित जीवन निर्वाह कर सके खासकर आवास, सफ़ाई, बिजली, पानी, यातायात तथा संचार जैसी बुनियादी सुविधायें उपलब्ध करायी जाएं।

2. ***बाल अधिकार सम्मेलन (CRC) -*** इसके मुताबिक सरकार का दायित्व है कि देश के सारे बच्चों के विकास के लिए भौतिक मदद दे तथा सहायता कार्य भी चलाए खासकर पोषण, कपड़ा तथा आवास से संबंधित।

3. ***जातीय भेदभाव के खिलाफ़ अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (CERD) -*** इसके मुताबिक सरकार की यह ज़िम्मेदारी है कि वह नस्ल, रंग, राष्ट्रीयता तथा जाति के आधार पर भेदभाव के उन्मूलन के लिए काम करे तथा लोगों के निम्नलिखित अधिकारों को सुनिश्चित करें।
   - लोगों द्वारा व्यक्तिगत अथवा सामूहिक स्तर पर संपत्ति अर्जित करने का अधिकार
   - आवास का अधिकार

4. ***आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कतिक अधिकारों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (ICESCR) –***
   इसमें तय है कि किसी भी व्यक्ति तथा उसके परिवार का यह अधिकार है कि उसके पास उचित रहन सहन (रोटी, कपड़ा और मकान) की व्यवस्था हो जिसकी बेहतरी के लिए सरकार हमेशा प्रयासरत रहे। संसाधन की कमी का बहाना बनाकर लोगों को उनके अधिकार से वंचित रखना इन समझौतों का साफ़–साफ़ उल्लंघन करना होगा।

घरेलू कानून (National Legal Obligations)

1. ***भारतीय संविधान के अनुच्छेद 13, 14, 15 तथा 16 -*** इन अनुच्छेदों का उद्येश्य भारत के किसी भी नागरिक के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कतिक अधिकारों के रास्ते में आनेवाले अवरोधों को दूर करना है। साथ–साथ

संविधान के दूसरे भाग में उल्लिखित मौलिक अधिकारों, भाग चार के 'राज्य नीति के लिए दिशासूचक सिद्धांत, तथा संविधान के प्रस्तावना को भी ध्यान में रखना है।

2. अनुच्छेद 19(1)(e) - निवास का अधिकार

3. अनुच्छेद 21 - जीवन जीने का अधिकार। रोज़गार का अधिकार भी जीवन जीने के अधिकार से जुड़ा हुआ है क्योंकि अगर किसी व्यक्ति से उसका रोज़गार छीन लिया जाए तो वह जीवन जीने के लिए ज़रूरी साधनों को जुटा नहीं पाएगा।

4. अनुच्छेद 51 — इसके अनुसार देश की सरकार लोगों के अधिकारों के लिए जितने भी अन्तर्राष्ट्रीय संधि समझौते हुए हैं उनका पालन करेगी।

घरेलू कानूनों तथा अंतर्राष्ट्रीय संधियों के तहत लोगों के हक़

समुचित आवास का अधिकार एक बहुत ही व्यापक अधिकार है जिसको कि अन्य समानुरूप अधिकारों से अलग नहीं किया जा सकता। अतः HIC की तकनीकी टीम ने

समुचित आवास के अधिकार संबंधित मापदंड को विकसित किया है। इसके इस्तेमाल से यह पता चला है कि पिछले 25 साल में पुनर्वास के दौरान हर तरह के मानव अधिकार, बाल अधिकार तथा आवास के अधिकार का उल्लंघन हुआ है।

	आवासीय प्रावधान	जाँच के निष्कर्ष
1	स्थाई आवास	हर बस्ती में जबरन विस्थापन का इतिहास
2	सार्वजनिक सेवायें	जो न्यूनतम सेवायें पुरानी बस्ती में थी, उनसे भी वंचित
3	प्राकतिक संसाधन	भौगोलिक दष्टि से पुनर्वास बस्ती रहने लायक नहीं
4	आर्थिक स्थिति	25 वर्ष के बाद भी विस्थापित परिवार घर के लिये लिया गया क़र्ज़ा लौटा नहीं पाये हैं, साथ ही कमाई पहले के मुकाबले आधी हो गई है
5	आवागमन के साधन	पहुंच मार्ग और बस सेवाओं का अभाव
6	सांस्कतिक तालमेल	विस्थापित लोगों से उनकी सांस्कतिक व सामाजिक आवश्यकताओं के बारे में कोई परामर्श नहीं लिया गया
7	आवास के योग्य	पुरानी बस्तियों मे जगह और सुविधायें अधिक थीं। पुनर्वास बस्तियों में ज़मीन का दूसरा उपयोग (खेती, मरघट) पहले से हो रहा था
9	विस्थापन	बिना नोटिस के और बिना परिवहन की उचित व्यवस्था किये, जबरन विस्थापन
10	पुनर्वास स्थान	परिवहन का अभाव, रोज़गार में घाटा
11	ऋण की व्यवस्था	25 साल बाद भी क़र्ज़दार, घाटे के लिये कोई मुआवज़ा नहीं
12	जानकारी	अपर्याप्त नोटिस, ग़ैर–कानूनी प्रक्रिया, विस्थापन का कारण किसी को नहीं पता
13	वाजिब ज़मीन	दलदली ईलाकों में ऊबड़ खाबड़ भूमि, आवास के योग्य नहीं
14	भागीदारी	बिल्कुल नहीं
15	उचित पुनर्वास	रोज़गार कमाई में नुकसान, कोई मुआवज़ा नहीं
16	वातावरण	जीवन असुरक्षित, खास तौर से स्वच्छ वातावरण का अभाव
17	सुरक्षा	परिवार में किसी एक सदस्य को हमेशा घर पर रहना पड़ता है; ग्रामवासियों से झगड़ा; विस्थापन में बल का प्रयोग
18	अभिव्यक्ति	कोई सुनवाई नहीं, अधिकारियों द्वारा माँगों की अवहेलना
19	पेयजल की व्यवस्था	अपर्याप्त और अक्सर पीने के लायक नहीं

सर्वेक्षण से निकले कुछ तथ्य तथा सुझाव :

- दिल्ली में न सिर्फ़ ग़ैर–क़ानूनी/जबरन विस्थापन का लम्बा इतिहास रहा है बल्कि बाहर से आकर यहाँ बसने का भी उतना ही लंबा इतिहास है।
- शहर को सस्ते मज़दूरों की ज़रूरत है, जिससे कि उत्पादन खर्च कम बना रहे तथा धनी वर्ग के लोगों के ऊँचे जीवन स्तर में परिवर्तन न हो। ग़रीब मज़दूर इस कमी को पूरा करते हैं।

- लेकिन शहर उन्हें इसके बदले में अच्छे जीवनयापन के लिए कोई सुविधा मुहैया नहीं कराता है।
- इसलिए ग़रीब जनता झुग्गी झोपड़ियों में रहने के लिए मज़बूर है।
- तथा जैसे–जैसे शहर फैल रहा है व इसके ज़मीन का मूल्य बढ़ता है ग़रीब जनता तथा मज़दूर वर्ग को शहर की परिधि में धकेला जा रहा है। इसके चलते वे न सिर्फ़ अपने रोज़गार से बल्कि जीविकोपार्जन के अवसर, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य सामाजिक ज़रूरतों से वंचित हो रहे हैं।
- लोगों को विस्थापित करने तथा सामाजिक सुरक्षा देने के मामले में दिल्ली सरकार पूरी तरह असफल रही है।
- **मानवाधिकारों का भीषण तथा व्यवस्थित रूप से हनन हो रहा है।**
- **पहले से ग़रीब और हाशिये पर खड़े मज़दूर वर्ग को सजा देकर और ग़रीब बनाया जा रहा है।**
- **महिलाओं, बच्चों, विकलांग तथा अल्पसंख्यकों के प्रति ऐतिहासिक/व्यवस्थित अन्याय हो रहा है।**

दल का दिल्ली नगर निगम (MCD) तथा भारत सरकार को सुझाव

एक निर्णायक समिति का गठन किया जाये जो ''राष्ट्रीय आवास नीति'' तथा ''राष्ट्रीय स्लम नीति'' का निर्धारण करे, जिसमें उन सभी लोगों को शामिल किया जाए जो इस समस्या से जुड़े हैं विशेषकर जो झुग्गी झोपड़ियों में निवास कर रहे हैं। तथा नीति में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाए।

- वर्तमान निवास को यथास्थित रहने देना चाहिए।
- भेदभाव न किया जाए तथा स्त्री पुरुष में समानता बरती जाए।
- पहले से रहने वाले लोगों को ज़मीन पहले आबंटित की जानी चाहिए।
- समुचित वित्त, वस्तु तथा तकनीकी सुविधा मुहैया कराना चाहिए।
- भूमि–सुधार तथा शहरी क्षेत्र की ज़रूरतों के अनुसार कार्यकाल में परिवर्तन हो।
- अगर विस्थापन लोगों के हित में आवश्यक हो तो लोगों की सलाह लेकर और मानवाधिकारों का ध्यान रखते हुए विस्थापन किया जाए।
- नई जगह पर बुनियादी नागरिक सुविधाएं विस्थापन से पहले मुहैया करायी जाए।
- जिन लोगों को उनके घरों से विस्थापित किया जा रहा है उन्हें मुआवजा दिया जाए।
- समुचित आवास का मानवाधिकार निरर्थक है अगर उसे जीने के अधिकार, रोज़गार तथा आर्थिक अवसर एवं शिक्षा, स्वास्थ्य एवं दूसरे नागरिक सुविधाएं उपलब्ध न हो।

(अनुवादः राजीव)

❑

बहुमंज़िली ईमारतें

राज़ीव एवं विनोद

बहुमंज़िली इमारतें – चमकती दीवारें, गर्दन टेढ़ी कर देनी वाली ऊँचाई, लिफ़्ट, सामने बागीचा, गेट पर चौकीदार वगैरह–वगैरह, कितनी अच्छी लगती हैं ये इमारतें। परन्तु क्या ये कभी ग़रीब मज़दूरों को भी हासिल हो सकती है? हाँ ! सरकार की नई नीति के अनुसार अब झुग्गी झोपड़ी वालों को बहुमंज़िली इमारतों में बसाया जाएगा। ग़रीबों ने कभी सपने में भी यह नहीं सोचा होगा कि ऐसा कभी संभव हो सकेगा। धन्य हो यह सरकार कि वह ग़रीबों के लिए कितना सोचती है।

सरकार की नीति के अनुसार जिस जगह पर झुग्गी झोपड़ियाँ बसी हुई हैं उसी जगह पर पाँच–पाँच मंज़िली इमारत बनाकर उनका पुनर्वास किया जाएगा। इसमें प्रत्येक परिवार को 12½ वर्ग मीटर का एक कमरा दिया जाएगा। यह नीति पूर्ण रूप से तैयार नहीं हुई है परन्तु यह अंदेशा है कि प्रत्येक परिवार से इन इमारतों में पुनर्वास के लिए कम से कम 1 लाख रु. लिये जाएंगे। सरकार के अलावा बहुत से स्वंयसेवी संगठन भी यह मानने लगे हैं कि दिल्ली की आम जनता की आवास संबंधित समस्या का यह सबसे अच्छा हल है।

क्या इस प्रकार का पुनर्वास पहली बार हो रहा है? नहीं। 1976-77 में आपातकाल के दौरान जगमोहन ने करीब 1 लाख 80 हज़ार लोगों की झुग्गियों को दिल्ली के सौन्दर्यीकरण के नाम पर तोड़ दिया था। तीन–चार साल तक ट्रांज़िट कैम्प में रहने के बाद कुछ लोगों को बहुमंज़िली ईमारतों में बसाया गया था। इसके लिए DDA ने प्रत्येक परिवार से करीब 37,000 रु. लिये थे। इनमें से कई परिवारों को तो काग़ज़ात मिले और कइयों के आज तक करीब 25 वर्ष बाद भी कुछ नहीं मिला। ये इमारतें दिल्ली में कई जगहों पर स्थित हैं। जैसे पंजाबी रिफ्यूज़ी कालोनी, मंगोलपुरी, तुर्कमान गेट, अजमेरी गेट, मातासुन्दरी रोड, रणजीत नगर इत्यादि।

इनमें से हर एक कालोनी के पीछे कोई न कोई कहानी छुपी है जिनमें सबसे ख़ौफ़नाक और दिल दहलाने वाली कहानी है मंगोलपुरी की। यह लोग पशुओं जैसी ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं। कुल 252 फ्लैट्स में करीब 2000 लोग तिमंज़िली इमारत में 1986 से रह रहे है। प्रत्येक परिवार के पास एक कमरा है तथा एक परिवार में औसत 6-7 लोग रहते हैं। हर मंज़िल के कोने में कुछ शौचालय बने हुए हैं जिन्हें देखकर लगता है कि कोई इंसान इसका उपयोग नहीं करता होगा। लेकिन यहाँ के लोग इसी के इस्तेमाल के लिए अभिशप्त हैं। बाथरूमों तथा शौचालयों में पानी तथा मल जमा रहता है। लोगों

के घरों में छत से पानी टपकता है। दीवारें गिर रही हैं। लेकिन लोगों के पास कोई विकल्प नहीं है क्योंकि यह जानते हुए भी कि कभी भी मौत उन्हें निगल सकती है वे वहीं रहने को मजबूर हैं। सबसे भयावह स्थिति तो वहाँ फैले हुए बिजली के तारों की है। चारों तरफ ये ऐसे फैले हुए हैं मानो कोई खूंखार जानवर आपको लपकने के लिए लटका हुआ है। कई लोग तो इसकी चपेट में आकर जान भी गंवा बैठे हैं।

तुर्कमान गेट इलाके में 25 ईमारतें हैं जिनमें कुल 450 फ्लैट हैं। इन चार मंज़िले ईमारतों को अभी मात्र 20-22 साल ही हुए हैं लेकिन उन्हें देखकर लगता है कि वे बहुत ही पुराने हैं। रख–रखाव के नाम पर कुछ भी नहीं है। दीवारों की हालत जर्जर है। कइयों की तो छत ही बैठ गयी है। कुछ लोग तो बालकनी के साथ नीचे गिरकर अपनी जान गंवा बैठे हैं। छतों पर बने टंकियों में पानी पहुँच नहीं पाता। यहाँ तक की पहली मंज़िल तक भी पानी चढ़ाने के लिए लोगों को बूस्टर का इस्तेमाल करना पड़ता

है। कुछ साल पहले तक तो सीवर की निकासी की भी व्यवस्था नहीं थी। इतना ख़तरनाक तथा गंदा काम करने के बावजूद ठेकेदार अधिकारियों के साथ अपनी सांठगांठ की वजह से बचा हुआ है। इन मकानों में आये दिन होनेवाली दुर्घटनाओं के समाचार टी. वी. तथा अख़बार में भी आ चुके है लेकिन लोगों की समस्याओं की ओर

किसी का ध्यान अभी तक नहीं गया है। इस इलाके की सफ़ाई तथा मकानों के रख–रखाव की ज़िम्मेदारी किस विभाग की है यह बीस साल बाद भी लोगों को पता नहीं। लोग अपनी समस्याओं को लेकर एक विभाग से दूसरे विभाग की ठोकर खाते रहते हैं लेकिन बदले में उन्हें हाथ लगती है निराशा।

झुग्गी–झोपड़ी वासियों के लिए जो पाँच मंज़िली ईमारतें बनेंगी (जिन्हें बम्बइया भाषा में ''चाल'' कहा जाता है) उनमें कई प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। सबसे पहले इनमें पानी पहली मंज़िल तक भी नहीं चढ़ पाता है जिस सूरत में लोगों को बूस्टर पम्प लगाना पड़ता है। पूरी ईमारत या सीढ़ी वगैरह की देखरेख कोई नहीं करता। अगर मान लें कि अंधेरा है और सीढ़ियाँ टूटी हुई हैं और ऐसे में कोई दुर्घटना हो जाये तो कौन इसका ज़िम्मेदार होगा? इसके अलावा कई ऐसे कारण होते हैं जिससे इन ईमारतों में ख़र्चा बहुत बढ़ जाता है। कोई ग़रीब कहाँ से इतने पैसे लाएगा कि वह बूस्टर पम्प लेकर आए और फिर बिजली का बिल भरे? बूस्टर पम्प न हो तो पीने का पानी कहाँ से आएगा? बच्चे कहाँ खेलेंगे और चारपाई कहाँ बिछेगी?

सरकार की इस नई योजना के तहत झुग्गी वालों को बहुमंज़िली ईमारतों में पक्के कमरें तो मिल जाएँगे पर इन ऊपरी खर्चों को वहन न कर पाने की हालत में ग़रीब मकान बेच देगा। कुछ धनी लोग उसे कम पैसों में खरीद कर बाद में ज़्यादा दाम में बेच देंगे। हमारे सर्वे के मुताबिक जहाँ–जहाँ भी ऐसी बहुमंज़िली ईमारते हैं वहाँ भू–माफ़िया व सरकारी अफ़सरों की मिली भगत से ग़रीबों को डरा धमका कर उनसे मामूली कीमत में घर खरीद लिया जाता है। अमीर व्यक्ति 3-4 फ्लैट एक साथ खरीद कर वहाँ एक आलीशान फ्लैट बना लेता है और ग़रीब व्यक्ति, जिसके लिए ये बहुमंज़िली ईमारतें बनाई गई थीं, वो वापस झुग्गी बनाकर रहने लगता है।

क्या सरकार की नीयत वाकई लोगों को पक्के मकानों में बसाने की है या उसमें कोई खोट है? यह स्पष्ट है कि गरीब अंततः घूम फिर कर झुग्गी में ही पहुँच जाता है। अतः ज़रूरत है कि इस नीति में से खोट को निकाल कर दूर किया जाये। यह तब तक संभव नहीं जब तक कि प्रभावित लोग या वे लोग जो प्रभावित होने वाले हैं खुलकर सामने आएं। इसके पहले कि यह नीयत नीति में बदल जाये लोग खुद सरकार के समक्ष अपनी सुरक्षा तथा सम्मानजनक ज़िन्दगी जीने के अधिकार को रखें व हासिल करें।

❑

अधिकारों की रक्षा

भारत के संविधान (जो देश का बुनियादी कानून है) में धारा 21 के अनुसार हर नागरिक को जीने का मौलिक अधिकार है। सर्वोच्च न्यायालय ने कई फैसलों में कहा है कि धारा 21 में आवास और रोज़गार का हक़ भी शामिल है। आवास का मतलब केवल घर नहीं बल्कि उन सभी सुविधाओं से जुड़ा है (पानी, बिजली, भोजन, स्वच्छ पर्यावरण, स्वास्थ्य, सफाई, सड़क इत्यादि) जिनके सहारे इंसान स्वाभिमान की ज़िंदगी जी सके।

यही बात भारत सरकार ने दर्जन भर अंतर्राष्ट्रीय संधियों और समझौतों में दोहराई है जिन पर पिछले 50 वर्षों में सरकार ने हस्ताक्षर किये हैं। इन दस्तावेजों में समानता, ग़रीबों और महिलाओं के लिये खास प्रावधान और सहायता, पर्याप्त आवास और सेवायें, तथा जबरन विस्थापन को रोकने पर विशेष बल दिया गया है। इन शर्तों को पूरा करने के लिये सरकार बाध्य है।

न्याय का मूल सिद्धांत है कि किसी भी प्रभावित व्यक्ति या समुदाय की सुनवाई ज़रूरी है। अर्थात ऐसे व्यक्तियों को पर्याप्त सूचना देने का दायित्व सरकार पर है। साथ ही उन्हें अपना पक्ष रखने का मौका भी मिलना चाहिये। यह प्रावधान बस्ती (स्लम) सुधार अधिनियम 1956, दिल्ली विकास प्राधिकण अधिनियम 1957, दिल्ली नगर पालिका अधिनियम 1957, और भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1984 में भी पाये जाते हैं।

हाल ही में केंद्रीय शहरी विकास मंत्री नें लाजपत नगर के निवासियों को आश्वासन दिया था कि किसी भी विस्थापन या तोड़–फोड़ के पहलेः

1. नागरिक निकाय मकान के मालिक को पहले सूचना भेजेंगे।
2. मालिकों के पास तथाकथित अवैध निर्माण से संबंधित अपने जवाब भेजने के लिए 14 दिन का समय होगा।
3. नागरिक निकाय इस जवाब की पड़ताल करेगा।
4. प्रत्येक मालिक को सुनवाई का भी मौका दिया जायेगा।
5. इसके पश्चात उपआयुक्त एक मौखिक आदेश पारित करेगा।
6. इसके बाद ही किसी प्रकार के तोड़–फोड़ का आदेश दिया जा सकता है।
7. तोड़–फोड़ के आदेश के खिलाफ़ मालिक कोर्ट जा सकता है।
8. अगर कोर्ट का निर्णय नागरिक निकाय के पक्ष में होता है तो भी मकान मालिक के पास अवैध निर्माण को स्वयं तोड़ने या वहाँ से अपने सामान को हटाने के लिए तीन दिन का वक़्त होगा।
9. यदि नोटिस मकान मालिक को न देकर किसी और को दिया जाता है तो नागरिक निकाय मकान नहीं तोड़ सकता है।

यदि ये प्रावधान लाजपतनगर के नागरिकों के लिये वाजिब हैं तो बाकी सभी नागरिकों को भी इसका फ़ायदा मिलना चाहिये। बराबरी का आदेश संविधान की धारा 14 में दिया हुआ है। न्याय के मूल सिद्धांतों में यह भी है कि न्यायाधीश पक्षपात न करे – याने कि हर नागरिक को वो बराबरी का दर्जा दे। साथ ही वह अपना फैसला कारणों सहित सुनाये ताकि इंसाफ़ तर्कसंगत हो।

यदि ऊपर दिये हुए प्रावधानों (जीने, रोज़गार और आवास के मौलिक अधिकार; जबरन विस्थापन पर रोक; पर्याप्त सूचना और सुनवाई का अधिकार; और बिना पक्षपात के इंसाफ़) की कहीं भी अवमानना होती है तो इसका मतलब है कि नागरिक हकों का हनन हुआ है और नागरिक अदालत के दरवाज़े पर दस्तक दे सकते हैं या सड़क पर विरोध कर सकते हैं।

- सर्वोच्च न्यायालय ---

'' जीवन, जीविका और आवास एक दूसरे से ऐसे गुथे हुए हैं कि उन्हें अलग करना असंभव है।''

साझा मंच एक प्रयास
समूहों और संगठनों का
प्रयास सवाल जवाब ढूंढने का
मेहनतक़शों की ज़िंदगियों का
कहां है पानी पीने का?
कहां है हक़ स्वास्थ्य पाने का?
रोज़गार पाने का ?
घर बनाने का ?
बिखरी थी पूरी ताकत
इसी शहर के चारों तरफ
एक प्रयास है ताकत बटोरने का
हक़ की लड़ाई लड़ने का
-- प्रारंभिका

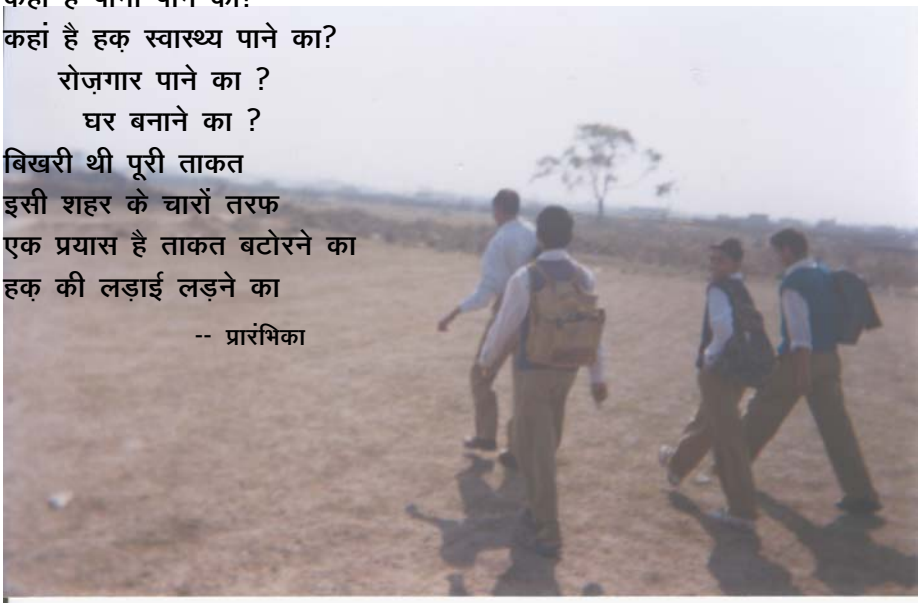

साझा मंच *द्वारा प्रकाशित*

C/o ***खतरा केन्द्र,***
92-H *(तीसरी मंजिल),*
प्रताप मार्केट, मुनीरका,
नई दिल्ली - 110067.
फोन *: 6187806, 6714244*
ई. मेल *: haz_cen@vsnl.net*

सहयोग राशि – रु. 10/-